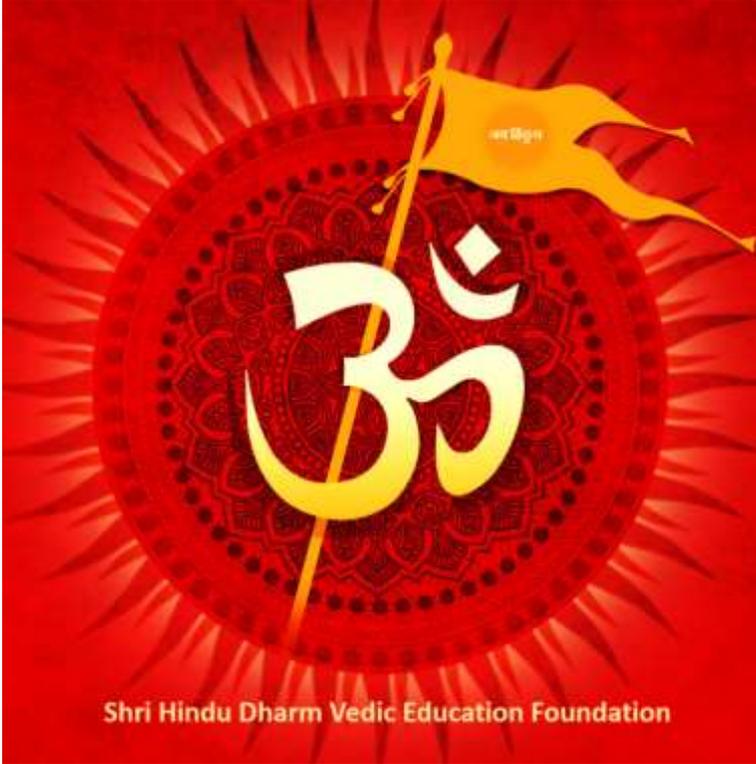




॥ ॐ ॥  
॥ श्री परमात्मने नमः ॥  
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

# आत्मबोधोपनिषत्





## विषय सूची

॥अथ आत्मबोधोपनिषत्॥.....	3
प्रथम अध्याय.....	5
द्वितीय अध्याय.....	8
शान्तिपाठ.....	17



॥ श्री हरि ॥

## ॥ अथ आत्मबोधोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

श्रीमन्नारायणाकारमष्टाक्षरमहाशयम् ।  
स्वमात्रानुभवात्सिद्धमात्मबोधं हरिं भजे ॥

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ॥  
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्  
संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु  
तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूँगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।



॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥



॥ श्री हरि ॥  
॥ आत्मबोधोपनिषत् ॥

॥ आत्मबोध उपनिषद् ॥

प्रथम अध्याय

ॐ प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपं अकार उकार  
मकार इति त्र्यक्षरं प्रणवं तदेतदोमिति । यमुक्त्वा मुच्यते  
योगी जन्मसंसारबन्धनात् । ॐ नमो नारायणाय  
शङ्खचक्रगदाधराय तस्मात् ॐ नमो नारायणायेति  
मन्त्रोपासको वैकुण्ठभवनं गमिष्यति । ॥१॥

स्वयं अपने आप में आनन्द स्वरूप विराट् ब्रह्म पुरुष 'अकार-उकार-  
मकार' से युक्त यह तीन अक्षरों वाला ॐकार रूप प्रणव का स्वरूप  
है। इसका जप करने से योगीजन सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाते  
हैं। शंख, चक्र एवं गदा को धारण करने वाले परमात्मा स्वरूप  
नारायण के लिए नमस्कार है। 'ॐ नमो नारायणाय' नामक इस मन्त्र  
की उपासना करने वाला मनुष्य वैकुण्ठ धाम को प्राप्त करता है ॥१॥

अथ यदिदं ब्रह्मपुरं पुण्डरीकं तस्मात्तडिताभमात्रं  
दीपवत्प्रकाशम् ॥ ॥२॥



जो यह हृदय रूपी कमल है, वही ब्रह्मपुर है। केवल अकेला वही क्षेत्र विद्युत् अथवा दीपक के सदृश प्रकाशमान होता है ॥२॥

ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः ।  
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युतः ॥३॥

देवकी पुत्र भगवान् कृष्ण ब्राह्मणों का हित चाहने वाले हैं, (वे) मधुसूदन ब्राह्मणों को सदा हित करने वाले हैं, कमल के सदृश नेत्र वाले भगवान् विष्णु ब्राह्मणों के शुभचिन्तक हैं तथा वे अविनाशी भगवान् अच्युत ब्राह्मणों के प्रिय हैं ॥३॥

सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्मोम् । ॥४॥

समस्त भूत-प्राणियों में स्थित रहने वाले एक मात्र भगवान् नारायण ही कारण रूप विराट् पुरुष हैं, वे स्वयं ही कारणरहित हैं, परब्रह्म हैं, वे प्रणवरूप ॐकार स्वरूप हैं ॥४॥

शोकमोहविनिर्मुक्तो विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।  
द्वैताद्वैतमभयं भवति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह  
नानेव पश्यति । ॥५॥

इस प्रकार से भगवान् विष्णु का चिन्तन करने वाला शोक और मोह से मुक्त होकर कभी भी दुःख को नहीं प्राप्त होता। (वह) द्वैत (भेद बुद्धि वाला), अद्वैत (भेद रहित बुद्धिवाला) हो जाता है। मृत्यु से वह



भयरहित हो जाता है। जो भी व्यक्ति इस ब्रह्म में भेद देखता है, वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त करता है ॥५॥

हृत्पद्ममध्ये सर्वं यत्तत्प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् ।  
प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ॥६॥

हृदय कमल के बीच में जो सर्वरूप (चेतन) है, वह प्रज्ञान में प्रतिष्ठित है। यह लोक प्रज्ञा रूप नेत्र से युक्त है या प्रज्ञा से ही गतिशील है। (सर्वत्र) प्रज्ञा ने प्रतिष्ठा प्राप्त की है, अविनाशी ब्रह्म प्रज्ञान स्वरूप है ॥६॥

स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके ।  
सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवदमृतः समभवत् ॥ ॥७॥

वह श्रेष्ठ ज्ञानी इस उत्कृष्ट ज्ञान-सम्पन्न आत्मा के रूप में इस लोक से ऊर्ध्वगमन करके उच्च स्थान पर जाकर स्वर्गलोक में सर्वकामनाओं को प्राप्त करके अमर हो गया ॥७॥

॥ इति प्रथमा अध्यायः ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

## द्वितीय अध्याय

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिंल्लोकेऽभ्यर्हितम् । तस्मिन्मां देहि  
स्वमानमृते लोके अक्षते अच्युते लोके अक्षते अमृतत्वं च  
गच्छत्यो नमः ॥ १ ॥

जहाँ पर नित्य ज्योति स्थिर रहती है, जिस लोक में सभी प्राणियों की आत्मा के रूप में सेवा होती है, ऐसे उस अमर लोक में आप मुझे स्थान प्रदान करें। इस अविनाशी अमरलोक में कुछ काल के लिए भी रहने वाला जीवन्मुक्त होकर और अमृतत्व प्राप्त करके विदेह (मुक्त) होकर कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है, उस ॐकार (स्वरूप आत्मतत्त्व) को नमस्कार है ॥ १ ॥

प्रगलितनिजमायोऽहं निस्तुलदृशिरूपवस्तुमात्रोऽहम् ।  
अस्तमिताहन्तोऽहं प्रगलितजगदीशजीवभेदोऽहम् ॥ २ ॥

मेरी स्वयं की माया विशेष रूप से गलित हो गई है। मैं अतुल दर्शन रूप वस्तु मात्र ही हूँ। मेरा अहंकार नष्ट हो चुका है तथा जगत्, ईश्वर एवं जीव जैसे भेद मेरे लिए नष्ट हो गये हैं ॥ २ ॥

प्रत्यगभिन्नपरोऽहं विध्वस्ताशेषविधिनिषेधोऽहम् ।  
समुदस्ताश्रमितोऽहं प्रविततसुखपूर्णसंविदेवाहम् ॥ ३ ॥

मैं प्रत्यगात्मा से अभिन्न परात्पर ब्रह्म हूँ। मेरे लिए सभी तरह के विधि-निषेध विनष्ट हो चुके हैं। मैं आश्रम धर्म से परे हूँ तथा मैं असीम सुख से परिपूर्ण एवं ज्ञान स्वरूप हूँ॥३॥

साक्ष्यहमनपेक्षोऽहं निजमहिम्नि संस्थितोऽहमचलोऽहम् ।  
अजरोऽहमव्ययोऽहं पक्षविपक्षादिभेदविधुरोऽहम् ॥ ४ ॥

मैं साक्ष्य रूप तथा किसी भी तरह की अपेक्षा से रहित हूँ। मैं अचल होकर अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित हूँ। मैं अजर, अमर हूँ तथा पक्ष-विपक्ष आदि भेद से रहित हूँ॥४॥

अवबोधैकरसोऽहं मोक्षानन्दैकसिन्धुरेवाहम् ।  
सूक्ष्मोऽहमक्षरोऽहं विगलितगुणजालकेवलात्माऽहम् ॥५॥

मैं एकमात्र ज्ञानरूप, रस स्वरूप हूँ। मोक्ष के आनन्द का एकमात्र सागर हूँ। मैं सूक्ष्म हूँ। मैं अक्षर हूँ। मैं विनष्ट गुण समूह वाला (त्रिगुणातीत) हूँ। मैं तो केवल आत्मा ही हूँ॥५॥

निस्त्रैगुण्यपदोऽहं कुक्षिस्थानेकलोककलनोऽहम् ।  
कूटस्थचेतनोऽहं निष्क्रियधामाहमप्रतर्क्योऽहम् ॥ ६ ॥

मैं त्रिगुणातीत अक्षय परम पद हूँ। मेरे उदर (कुक्षि) में अनेकों लोक विद्यमान हैं। मैं कूटस्थ चैतन्य स्वरूप हूँ, क्रियारहित धाम (आश्रय स्थल) हूँ तथा मैं वितर्क्य रहित हूँ॥६॥

एकोऽहमविकलोऽहं निर्मलनिर्वाणमूर्तिरिवाहम् ।  
निरवयोऽहमजोऽहं केवलसन्मात्रसारभूतोऽहम् ॥ ७ ॥

मैं एक हूँ, मैं अविकल अर्थात् परिपूर्ण हूँ, मैं निर्मल एवं निर्वाण मूर्ति हूँ। मैं अवयवों से रहित तथा मैं ही अजन्मा हूँ। केवल सत्स्वरूप में सब का सारभूत मैं ही हूँ ॥७॥

निरवधिनिजबोधोऽहं शुभतरभावोऽहमप्रभेद्योऽहम् ।  
विभुरहमनवद्योऽहं निरवधिनिःसीमतत्त्वमात्रोऽहम् ॥ ८ ॥

मैं अवधिरहित निज बोध रूप हूँ, मैं श्रेष्ठतर भावों से युक्त तथा भेदरहित हूँ। मैं अति विराट् तथा निर्दोष हूँ, अवधि एवं सीमा से रहित केवल आत्म स्वरूप हूँ ॥८॥

वेद्योऽहमगमास्तैराराधोऽहं सकलभुवनहृद्योऽहम् ।  
परमानन्दघनोऽहम् परमानन्दैकभूमरूपोऽहम् ॥ ९ ॥

मैं वेदान्त के द्वारा जाना जाता हूँ, आराधना के योग्य हूँ, सभी भुवनों में अनुपम सुन्दर हूँ, मैं परमानन्दघन स्वरूप हूँ तथा मैं ही परमानन्द रूप एकमात्र भूमा स्वरूप हूँ ॥९॥

शुद्धोऽहमद्वयोऽहं सन्ततभावोऽहमादिशून्योऽहम् ।  
शमितान्तत्रितयोऽहं बद्धो मुक्तोऽहमद्भुतात्माहम् ॥ १० ॥



मैं शुद्ध हूँ, अद्वैत हूँ, सतत भाव रूप हूँ। आदि रहित हूँ। मैं (जीव, प्रकृति एवं ब्रह्म के) त्रित से रहित हूँ। मैं बद्ध, मुक्त और अद्भुत स्वरूप वाला आत्मतत्त्व हूँ॥१०॥

शुद्धोऽहमान्तरोऽहं शाश्वतविज्ञानसमरसात्माहम् ।  
शोधितपरतत्त्वोऽहं बोधानन्दैकमूर्तिरेवाहम् ॥ ११॥

मैं पवित्र हूँ, अन्तरात्मा हूँ तथा मैं ही सनातन विज्ञान का पूर्ण रस 'आत्मतत्त्व' हूँ। शोध (अनुसन्धान) किया जाने वाला परात्पर आत्मतत्त्व हूँ और मैं ही ज्ञान एवं आनन्द की एकमात्र मूर्ति हूँ॥११॥

विवेकयुक्तिबुद्ध्याहं जानाम्यात्मानमद्वयम् ।  
तथापि बन्धमोक्षादिव्यवहारः प्रतीयते ॥ १२॥

मैं विवेक-बुद्धि से युक्त हूँ। मैं आत्मा को अद्वैत रूप में जानता हूँ, तब भी (शरीर रहते) बन्ध, मोक्ष आदि व्यवहार वाला हूँ॥१२॥

निवृत्तोऽपि प्रपञ्चो मे सत्यवद्भाति सर्वदा ।  
सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तेव केवलम् ।  
प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्न हि ॥ १३॥

यथेक्षुरससंव्याप्ता शर्करा वर्तते तथा ।  
अद्वयब्रह्मरूपेण व्याप्तोऽहं वै जगत्तयम् ॥ १४॥

ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः ।  
बुद्बुदादिविकारान्तस्तरङ्गः सागरे यथा ॥ १५ ॥

तरङ्गस्थं द्रवं सिन्धुर्न वाञ्छति यथा तथा ।  
विषयानन्दवाञ्छा मे मा भूदानन्दरूपतः ॥ १६ ॥

दारिद्र्याशा यथा नास्ति सम्पन्नस्य तथा मम ।  
ब्रह्मानन्दे निमग्नस्य विषयाशा न तद्भवेत् ॥ १७ ॥

विषं दृष्ट्वाऽमृतं दृष्ट्वा विषं त्यजति बुद्धिमान् ।  
आत्मानमपि दृष्ट्वाहमनात्मानं त्यजाम्यहम् ॥ १८ ॥

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति ।  
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति ॥ १९ ॥

न मे बन्धो न मे मुक्तिर्न मे शास्त्रं न मे गुरुः ।  
मायामात्रविकासत्वान्मायातीतोऽहमद्वयः ॥ २० ॥

मेरी दृष्टि से प्रपञ्च निवृत्त (दूर) हो गया है, तब भी सर्वदा वह सत्य के सदृश प्रतिभासित होता है। निश्चय ही सर्प आदि में जिस प्रकार रस्सी का अस्तित्व है, उसी प्रकार ही प्रपञ्च का भी अस्तित्व है। केवल मात्र ब्रह्म सत्ता के आधार पर ही प्रपञ्च का व्यवहार है, यह जगत् तो है ही नहीं। जिस तरह शक्कर गन्ने के रस में व्याप्त है, उसी तरह ही अद्वैत ब्रह्म आनन्द रूप में तीनों लोकों में विद्यमान है। जिस प्रकार सागर में बुलबुले से लेकर तरंगों तक कल्पित हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा ब्रह्म

से लेकर कीट पर्यन्त प्राणिमात्र कल्पित हैं। जिस तरह समुद्र की तरंगों में रहने वाले जल की इच्छा नहीं करते, उसी तरह केवल आनन्द स्वरूप होने में मुझे विषयों के आनन्द की कोई भी इच्छा नहीं रहती। जिस तरह सम्पत्ति से सम्पन्न व्यक्ति को दरिद्रता की कोई संभावना नहीं रहती, उसी तरह ही ब्रह्म के आनन्द में निमग्न रहने वाले मुझको विषयों की कोई आशा नहीं रहती। बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार विष और अमृत को देख करके विष का परित्याग कर देता है, उसी प्रकार मैं आत्मा को देख करके अनात्मा का परित्याग कर देता हूँ। जैसे घट (घड़े) को प्रकाश देने वाला सूर्य घड़े के नष्ट होने से स्वयं नष्ट नहीं हो जाता, वैसे ही शरीर को प्रकाश देने वाला साक्षी-परमात्मा, शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। न मेरे लिए कोई बन्धन है और न ही मुक्ति, न मेरे लिए कोई शास्त्र है और न ही मेरा कोई गुरु ॥१३-२०॥

प्राणाश्चलन्तु तद्धर्मैः कामैर्वा हन्यतां मनः ।  
आनन्दबुद्धिपूर्णस्य मम दुःखं कथं भवेत् ॥ २१ ॥

आत्मानमञ्जसा वेद्मि काप्यज्ञानं पलायितम् ।  
कर्तृत्वमद्य मे नष्टं कर्तव्यं वापि न क्वचित् ॥ २२ ॥

ये सब तो माया के विकास मात्र हैं तथा मैं (आत्मा) माया से परे स्वयं अद्वैत रूप हूँ। प्राण भले ही निकल जायें और मन चाहे अपने धर्मों एवं कामनाओं से विनाश को प्राप्त हो जाये; परन्तु आनन्द एवं बुद्धि की पूर्णता के कारण मुझे कैसे दुःख प्राप्त हो सकता है? मैं आत्मा को तो अनायास-सहज ही जानता हूँ, मेरा अज्ञान न मालूम कहाँ



पलायन कर गया है। अब मेरा कर्तृत्व-भाव बिल्कुल नष्ट हो गया है तथा मुझे कुछ भी करना शेष नहीं है ॥२१-२२॥

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातयः ।  
स्थूलदेहगता एते स्थूलान्द्रित्रस्य मे नहि ॥२३॥

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यकामक्रोधादयोऽखिलाः ।  
लिङ्गदेहगता एते ह्यलिङ्गस्य न सन्ति हि ॥ २४ ॥

जडत्वप्रियमोदत्वधर्माः कारणदेहगाः ।  
न सन्ति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण कुल- गोत्र, नाम की सुन्दरता एवं जाति का अस्तित्व तो मात्र स्थूल शरीर में ही होता है, मैं तो स्थूल पदार्थों से बिल्कुल पृथक् हूँ। क्षुधा (भूख), पिपासा (प्यास), अन्धापन, बहरापन, काम-क्रोध आदि सभी तरह के धर्म-लिङ्ग (चिह्न) आदि शरीर में स्थित रहते हैं, मैं तो इस लिंग शरीर से रहित हूँ। मुझमें इनमें से कोई भी विकार नहीं है। जड़ता, प्रियता और आनन्द मनाना आदि कारण शरीर के धर्म हैं। मैं तो नित्य और निर्विकार स्वरूप से युक्त हूँ, अतः ये (उपर्युक्त) सभी मेरे धर्म नहीं हैं ॥२३-२५॥

उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते ।  
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते ॥ २६ ॥



चक्षुर्दृष्टिनिरोधेऽभ्रैः सूर्यो नास्तीति मन्यते ।  
तथाऽज्ञानावृतो देही ब्रह्म नास्तीति मन्यते ॥ २७ ॥

यथामृतं विषाद्भिन्नं विषदोषैर्न लिप्यते ।  
न स्पृशामि जडाद्भिन्नो जडदोषान्प्रकाशतः ॥ २८ ॥

जैसे उलूक (उल्लू) को सूर्य अन्धकार युक्त दिखाई देता है, वैसे ही मूढ़ (अज्ञानी) मनुष्य को स्वयं प्रकाश स्वरूप परमानन्द में अज्ञान दृष्टिगोचर होता है। जैसे बादलों के कारण चारों ओर से दृष्टि के रुक जाने से लोग समझने लगते हैं कि सूर्य नहीं है, वैसे ही मूढ़ता से आवृत प्राणी यह मान लेता है कि ब्रह्म है ही नहीं। जिस प्रकार से अमृत विष से अलग है, इस कारण विष के दोषों से वह दूषित नहीं होता, उसी प्रकार मैं (आत्मा) जड़ से भिन्न हूँ। अतः जड़ के दोषों का मुझमें स्पर्श नहीं होता ॥२५-२७॥

स्वल्पापि दीपकणिका बहुलं नाशयेत्तमः ।  
स्वल्पोऽपि बोधो निबिडे बहुलं नाशयेत्तमः ॥ २९ ॥

कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति तथा मयि ।  
अहङ्कारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः ॥ ३० ॥

चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम ।  
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानान्द्राति सत्यवत् ॥ ३१ ॥



जैसे दीपकणिका अर्थात् दीपक की छोटी सी ज्योति भी बहुत बड़े अन्धकार को विनष्ट कर देती है, वैसे ही थोड़े से ज्ञान का प्रकाश भी घने अन्धकार रूपी अज्ञान को विनष्ट कर देता है। जैसे रस्सी में तीनों कालों में कभी भी सर्प नहीं है, वैसे ही अहंकार से लेकर शरीर तक का संसार मेरे अन्दर तीनों काल में नहीं है, मैं तो केवल अद्वैत रूप में ही हूँ। मैं चैतन्य स्वरूप हूँ, इसलिए मुझ में जड़ता नहीं है। मैं सत्य स्वरूप हूँ, इस कारण मुझ में झूठ नहीं है। मैं आनन्द स्वरूप हूँ, आनन्द स्वरूप होने के कारण मुझ में दुःख नहीं हैं। ये सभी (जगत्प्रपञ्च) तो केवल अज्ञान से ही प्रतिभासित होते हैं। ॥२९-३१॥

आत्मप्रबोधोपनिषदं मुहूर्तमुपासित्वा न स पुनरावर्तते न  
स पुनरावर्तत इत्युपनिषत् ॥३१॥

इस आत्मप्रबोध उपनिषद् का जो व्यक्ति कुछ क्षण भी उपासना (साक्षात्कार प्राप्त) कर लेता है, वह पुनः इस संसार में नहीं आता है, वह पुनः इस संसार में नहीं आता है, ऐसी यह उपनिषद् है ॥३१॥

॥ इति द्वितीयो अध्यायः ॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

॥ हरि ॐ ॥

## शान्तिपाठ

वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि ॥  
 वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्  
 संदधाम्यृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु  
 तद्वक्तारमवत्ववतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

हे सच्चिदानंद परमात्मन ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो जाए। मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो जाए। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मेरे सामने आप प्रकट हो जाएँ।

हे मन और वाणी ! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान को लानेवाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान कभी मेरा त्याग न करे। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे शब्दों का उच्चारण करूँगा, जो सर्वथा उत्तम हों तथा सर्वदा सत्य ही बोलूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, मेरे आचार्य की रक्षा करे।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति आत्मबोधोपनिषत् ॥

॥ आत्मबोध उपनिषद समाप्त ॥



संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष  
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

[www.shdvef.com](http://www.shdvef.com)

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥